**International Journal of Research in Hindi**
**www.hindijournal.in**
**ISSN: 2582-3493**
**Received: 09-11-2024, Accepted: 10-12-2024, Published: 25-12-2024**
**Volume 6, Issue 2, 2024, Page No. 18-19**

# कवि भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य में लोकमंगल के तत्व

**प्रणव शर्मा[1], डॉ. कैलाश शर्मा[2]**
[1] हिंदी विभाग, शास. वि. या. ता. स्नात. स्वशासी महाविद्यालय, दुर्ग, छत्तीसगढ़, भारत
[2] शोध निर्देशक, प्राध्यापक, हिंदी विभाग, इंदिरा शास. कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, वैशाली नगर, भिलाई, छत्तीसगढ, भारत

**सारांश**
आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने साहित्य लिखने के उद्देश्य को लेकर लोकमंगल की दो अवस्थाओं की चर्चा की है। जिसमें पहली लोकमंगल की सिद्धावस्था और दूसरी लोकमंगल की साधनावस्था है। उन्होंने लोकमंगल की सिद्धावस्था को भोगपक्ष प्रधान बताया है। ऐसी अवस्था में प्रेम, श्रृंगार और सौन्दर्यपूर्ण साहित्य ही लिखे जाते हैं। ऐसा साहित्य केवल मनोरंजन मात्र तक ही सीमित हो जाता है। वहीं लोकमंगल की साधनावस्था में लिखा साहित्य आदर्श की उच्च कोटियों तक पहुँचता है। साधनावस्था में साहित्यकार लोगों के मंगल और कल्याण के पक्ष को मुख्य रखता है। प्रस्तुत शोध पत्र के द्वारा कवि भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था के तत्वों को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

**मूल शब्दः** लोकमंगल, नवजागरण, साधनावस्था, मानवता, रणचंडी, ऐतिहासिक गौरव, समुदाय

## प्रस्तावना

हिंदी साहित्य के संसार में देखने पर आदिकाल से ही लोकमंगल की साधनावस्था को लेकर लिखे गए बहुत से साहित्य मिल जाते हैं। भक्तिकाल भी एक ऐसा समय रहा जब बाहरी देशों के आक्रमणों ने भारत में तबाही मचा रखी थी। हिन्दू जनता के सामने उनके मंदिर और मूर्तियाँ तोड़ दिए जाते थे। अन्याय और अत्याचार की सीमा लांघ दी गई थी। लोगों में निराशा की भावना ने घर कर लिया था। अपने गौरव को बचाने के लिए वे कुछ कर भी नहीं सकते थे। उनके हाथ में कुछ नहीं था। ऐसे समय में भक्त कवियों ने काव्य के माध्यम से आशा की किरण पहुँचाने का प्रयास किया। उस समय के संत कवियों कबीर, दादू, गुरुनानक, सुन्दरदास आदि ने लोकमंगल की साधनावस्था से भरे–पूरे काव्य लिखे।

आधुनिक काल के नवजागरण के समय में भारतेन्दुकालीन साहित्यकारों ने भी लोकमंगल की भावना को अपने साहित्य में सबसे आगे रखा। ऐतिहासिक गौरव को बचाने और लोगो में अपनी संस्कृति के प्रति आस्था से भरे साहित्य बड़ी मात्रा में लिखे गए। साहित्य लिखे जाने का उद्देश्य लोक कल्याण के लिए ही अधिक यथार्थ दिखाई देता है। स्वान्तः सुखाय के लिए तो हर मनुष्य लिख सकता है। लेकिन लोकमंगल की भावना से लिखा साहित्य जो स्वयं के साथ सभी के लिए उपयोगी हो, जिसमें सर्वेभवन्तु सुखिनः का भाव हो अवश्य ही सर्वोपरि कहा जायेगा।

कवि भवानी प्रसाद मिश्र का हृदय करुणा से भरा और छलकता हृदय था। लोकमंगल की भावना उनकी कविता के मूल भाव में से थे। सन् 1930 से जब उन्होंने कविता लिखने की शुरुआत की तब से ही उनकी कविताओं में जन समुदाय की पीड़ा को शब्द देने की कोशिश रही है। ब्रिटिश शासन के शोषण तंत्र से लोगों में आई निराशा और दुःख को कवि ने देखा और उन्हें आशा और उमंग की नयी सुबह देने में लग गए। जब समूचा भारत देश ब्रिटिशों के अत्याचार से पीड़ित था तब एक कवि का कर्तव्य बनता था कि वह अपने शब्दों से लोगों में उत्साह जगाने का प्रयास करे।

देश और देश के लोगों की स्थिति देखकर उनका हृदय दुरूखित हो जाता था। उन्हें भारत के लोगों की पीड़ा महसूस होती और वही पीड़ा कविता रूप में निकलती थी। कविता 'लेखनी से' में उनकी लेखनी से उनकी यही विनती है कि लेखनी उनका साथ दे। वे चाहते थे कि रणचंडी रूपी लेखनी के माध्यम से देश में फैले अत्याचारियों को जड़ से मिटा देने में अपना योगदान दे सकें। कवि अपने शब्दों की आग और लेखनी से गाज बनकर अत्याचारियों पर बरस जाने की बात करते हैं–

"तू मेरी है, मैं तेरा हूँ,
हाँ मेरी लाज रखे जाना,
मैं आगि रखता हूँ अपनी,
तू गाज रखे जाना।
मेरी इच्छा है, दो जीभों वाली तू
अपना रूप दिखा,
हर अत्याचार सूख जाए छू कर
तेरा विष–भरा लिखा !"[1]

भवानी प्रसाद मिश्र का कवि–मन देश की स्वतंत्रता के लिए बलिदान हो जाने वाले लोगों के लिए दुरूखित होता है। ऐसे संघर्ष भरे समय में वे सोचते हैं कि वे चाहकर कुछ भी मदद नहीं कर पा रहे हैं। यह समय आँखे मूंदकर बैठ जाने जैसा भी आसान नहीं था। तब वे शब्दों का सहारा लेते हैं। स्वयं में उर्जा भरते हुए कविता 'मधुमास' में कवि का मन मधुमास से आशीष मांगते हुए कहता है–

"असहनीय है यह कि
काल से हार रहें धरती के बेटे,
सोचें–भर अपना अभाग
कर आँख बंद, चुप लेटे–लेटे,
दो आशीष कि अगली रितु में
कह पाऊँ कुछ अलग कहानी।"[2]

साहित्यकार समाज की तस्वीर को अपनी रचनाओं में उतारने की कोशिश करता है। वह समाज का अंग बनकर उसे अपनी दृष्टि से देखता और समझता हुआ अपने अनुभवों को लिखता है। भवानी प्रसाद मिश्र मानव की असीम संभावनाओं के प्रति सजग दिखते हैं। वे अपनी कविता में मनुष्यता और मानवता से जुड़ी दृष्टि को आगे रखते हुए चाहते हैं कि उन्हें पढ़ने वाला आदमी कवि हो पाए या नहीं लेकिन उनके अंदर मानवता की उच्च भावना का विकास अवश्य हो–

"मैं कविता जो लिखता हूँ
सो कवि होने के लिए
और इस आशा में कि
लोग कविता लिखें या न लिखें
किसी दिन कवि हो जायेंगे
शब्द वे जो बोलेंगे साधारणतया भी
सबके दुःख–दर्द गायेंगे
और लौटेंगे मूल्य मानवता के
बदल जायेंगे आज के
ईंट के फर्शों की तरह जमे हुए
संवेदना–हीन मन!"[3]

भवानी प्रसाद मिश्र का कवि–मन गाँव और गाँवों के लोगों की स्थिति को देखकर भी व्यथा से भर जाता था। वे देखते हैं कि लोग झुग्गी–झोपड़ियों में रह तो रहें हैं लेकिन उन झोपड़ियों में घर जैसी छाँव नहीं है। कई झोपड़ियों में दरवाजे तो कई में चौखट तक नहीं हैं। लोगों के पास तन ढंकने तक के कपड़े नहीं हैं। बच्चे इधर–उधर घूमते हुए ही बड़े हो रहे हैं। उनका भविष्य भी स्पष्ट नहीं हैं। कविता 'गाँव' गाँवों में रहने वाले लोगों के जीवन–संघर्ष का रुदन दृश्य है–

"गाँव, इसमें झोपड़ी है, घर नहीं है,
झोपडी के फटकियाँ हैं, दर नहीं है,
धूल उड़ती है, धुएँ से दम घुटा है,
मानवों के हाथ से मानव लुटा है
सुबह की ठंडी हवा कपड़े नहीं हैं
पैर रखते हैं कहीं, पड़ते कहीं हैं
तंग गलियों में कहीं बच्चे खड़े हैं,
लाल हैं पर भाग पत्थर से लड़े हैं
हाय रे, बचपन तलक
सुख से न बीता हाय रे,
दारिद्र्य तूने खूब जीता।"[4]

गतिशील जीवन के प्रत्येक चरण के साथ कवि की दृष्टि बदलती रहती है। जीवन के विभिन्न पड़ावों के साथ वह सामने आयी स्थिति को नये आयामों से देखता है। भवानी प्रसाद मिश्र के अनुसार जीवन के संघर्ष भरे क्षणों में आदमी को टूटने से भयभीत नहीं होना चाहिए। अगर उसने अपने जीवन को ऊँचे शिखरों में ले जाने की आकांक्षा की है तो टूटने के भय का सवाल ही खड़ा नहीं होता। कवि की दृष्टि में टूटना भी जुड़ने के साथ होने वाली घटना है। ऐसी समग्रता की दृष्टि से ही उन्होंने कहा है–

"टूटना जरूरी नहीं है
ज़िंदगी में तो छोड़ो
कविता में भी
टूटना मेरा और तुम्हारा
तारा नहीं है आदमी
कि आसमान से धरती तक
तेजी से छूटे धरती पर पांव टिके हैं,
उसके उसे टूटना ही है तो
उड़कर अपनी जगह से पहले
ऊपर जाएगा फिर टूटेगा
छूटेगा तो झरने की तरह
किसी शिखर से छूटेगा![5]

स्वतंत्रता के वर्षों बाद भी देश की हालत में वांछित परिवर्तन नहीं हुए। गरीबी, भ्रष्टाचार, भेदभाव और लोगों के शोषण जैसी समस्याएं कम होने के स्थान पर बढ़ रही थीं। लोकतांत्रिक तरीके से बनी सरकार लोगों को अच्छा जीवन उपलब्ध कराने के लिए असफल थी। ऐसे में भवानी प्रसाद मिश्र का कवि–मन चिंता से भरने लगा। उन्होंने तो स्वतंत्रता के बाद खुशहाल भारत का सपना देखा था। ऐसा भारत जिसमें लोग सुख और शांति से जीवन जियें। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। जनता की सेवा और जरूरतें पूरी करने के वादे कर सत्ता पर बैठी तत्कालीन सरकार जनता की गुहार ही नहीं सुन रही थी। भवानी प्रसाद मिश्र ने इस स्थिति पर लिखा–

"पहले उन्होंने
प्रजा को रास्तों पर बिछाया
उन पर आना–जाना किया
और अब उसे इकट्ठा करके
पीट रहे हैं
कालीनों की तरह।"[6]

## निष्कर्ष

कवि भवानी प्रसाद मिश्र की कविताओं को पढ़कर यह देखा जा सकता है कि उन्होंने जीवनपर्यन्त लोकमंगल के लिए लिखा है। जिनमें लोगों के कल्याण और मंगल की संवेदना व्याप्त है। उनका कवि लोगों के लिए सोचता, लिखता और जीता रहा है। उनकी कविताओं को पढ़कर लगता है कि समस्त प्राणियों की पीड़ा कवि की अपनी पीड़ा बन गयी है। भवानी प्रसाद मिश्र शब्द परंपरा के कवि रहे हैं। उनके द्वारा लिखे गए एक–एक शब्द समाज में निवासरत लोगों के लिए ही लिखे गए हैं। इसलिए उनकी कविताएं व्यक्तिगत होते हुए भी सामाजिक होने का गुण रखती हैं। जिसमें समाज के सुख– दुःख, आशा–निराशा आदि सभी का मिश्रण देखने को मिलता है। निरूसंदेह कवि भवानी प्रसाद मिश्र की कविताएं सम्पूर्ण धरती की मंगल कामना से भरी हुई लोकमंगल की साधनावस्था की कविताएं हैं।

## सन्दर्भ सूची


1. मिश्र, भवानी प्रसाद, गीत–फ़रोश, नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, प्रथम संस्करण, 1953, पृष्ठ 31.
2. मिश्र, भवानी प्रसाद, गीत–फ़रोश, नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, प्रथम संस्करण, 1953, पृष्ठ 93.
3. मिश्र, भवानी प्रसाद, तूस की आग, हिमाचल पुस्तक भंडार, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1985, पृष्ठ 117–118.
4. मिश्र, भवानी प्रसाद, गीत–फ़रोश, नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, प्रथम संस्करण, 1953, पृष्ठ 36.
5. मिश्र, भवानी प्रसाद, परिवर्तन जिए, प्रतिश्रुति प्रकाशन, कोलकाता, प्रथम संस्करण, 2018, पृष्ठ 32.
6. मिश्र, भवानी प्रसाद, त्रिकाल संध्या, प्रतिश्रुति प्रकाशन, कोलकाता, प्रथम संस्करण, 2018, पृष्ठ108.